बनास जन

बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

बनास जन | अव्यावसायिक
अक्टूबर-दिसम्बर 2024 | अंक 78, वर्ष 16

परामर्श : प्रो. काशीनाथ सिंह, वाराणसी
डॉ. ममता कालिया, दिल्ली
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जयपुर
प्रो. माधव हाड़ा, उदयपुर
श्री महादेव टोप्पो, राँची

सम्पादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

सहयोग राशि : 100 रुपये (यह अंक)–डाक द्वारा मँगवाने पर–125 रुपये
200 रुपये (संस्थागत)–डाक द्वारा मँगवाने पर–225 रुपये
6000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
10,000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
ह्वाट्सअप : +91–8130072004 (केवल लिखित संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

कृपया रचनाएँ भेजने के लिए सिर्फ ई-मेल का उपयोग करें। आग्रह है कि इस संबंध में पूछताछ न करें। 'बनास जन' में सभी रचनाओं का स्वागत है।

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित।

BANAAS JAN
Peer Reviewed Journal
(A Collection of Literature)

ISSN 2231–6558

अनुक्रम

अपनी बात		5
शताब्दी प्रसंग-1		
डायरी	नन्द चतुर्वेदी	7
कविता का समय और समाज	अशोक वाजपेयी	12
शताब्दी प्रसंग-2		
मोहन राकेश : घुच्ची आँखों का आकाश	अरविन्द कुमार	22
विरासत		
दुःख के वस्त्र	भाव रूपांतर : माधव हाड़ा	39
देश और उपन्यास		
छह माण आठ गुंठ आयो घोष बड़ो ब्योपारी!	रेणु व्यास	48
एक शहर : छह कवि		
ऋतुराज		64
हेमंत शेष		69
कृष्ण कल्पित		74
त्रिभुवन		78
अजंता देव		82
प्रेमचंद गांधी		85
कहानियाँ		
रसोइये	असग़र वजाहत	89
भूख, भोजन और भाग्य	लोकबाबू	96
कुलद्रोही	जमुना बीनी	100
हाजी इश्ताक	शहादत	108
कुछ और कविताएँ		
विनय सौरभ		115
सुबोध कुमार		120
हरे प्रकाश उपाध्याय		122

साहित्यिकी

प्रेमचंद की पाँच कहानियाँ	काशीनाथ सिंह	124
अरुण कमल : सेवक	सदाशिव श्रोत्रिय	130
सूखी नदी के घाट पर वापस	शंभु गुप्त	134
तेरा तुझको सौंप के	पवन कुमार	145
उत्तर-औपनिवेशिक पर्यावरण-बोध और अनुज लुगुन की कविता	यवनिका तिवारी	155

कथेतर

जीवन रेल के डिब्बे में	उपासना	161
समय की किरचें	सत्यनारायण	167
माइंड द गैप	राहुल श्रीवास्तव	171
जे.एन.यू. : पढ़ाई और राजनीति	अनुराग चतुर्वेदी	177
धार्मिक वैभव और खंडहरों का ठाठ	शैलेन्द्र सागर	181
गुलाब के फूल सब के लिए नहीं होते!	हेमंत शेष	189
मेरा छात्र जीवन	हरिराम मीणा	194
डायरी	विष्णु नागर	204

समीक्षा

गढ़ी जाती छवियों के बीच आत्म-छवि की तलाश	विभास वर्मा	210
जंगलगाथा : वनांचल के अनदेखे चित्र	पवन कुमार	213
अँधेरे की शिनाख्त और उजाले की खोज	रेखा कस्तवार	216
स्मृति संसार का वीजा है उपन्यास	सैयद शहरोज कमर	222
निष्कवच ज्ञानरंजन	गोपाल प्रधान	225
अपने साक्षात्कारों में परसाई	श्याम सुशील	228
आरपार की यात्राओं का बीजगणित	विजया सती	232
प्रेम और न्याय : अहिंसा का अर्थ-विस्तार	रेणु व्यास	238
सरस आख्यानों का शरबत : पुतली ने आकाश चुराया	देवीलाल गोदारा	243
कृष्णदत्त पालीवाल रचना संचयन : आलोचना के विविध पक्ष	अजय चंद्रवंशी	246
प्रेम, उदासी, दुःख और उम्मीद की कविताएँ	अमिता शीरी	248
कला-कृति और कलाकार के अन्तःसंबंध	हेतु भारद्वाज	252

अपनी बात

साहित्य के उद्देश्य के पर बार बार विचार करने की जरूरत है। साहित्य क्यों? बेहतर मनुष्यता के पक्ष में वातावरण बनाने के लिए और सार्थक जीवन के पक्ष में। बेहतर मनुष्यता की परिभाषा मनुष्य को उदात्त भावों और विचारों वाला नागरिक बनाने से है जो सभी प्रकार की संकीर्णताओं से मुक्त हो। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान हमारे सेनानी और मनीषी सोचते थे कि शिक्षा का दायरा बढ़ने के साथ-साथ धार्मिक, जातिगत और क्षेत्रगत संकीर्णताओं से हम मुक्तहोते जाएँगे। अब जब देश में शिक्षा का प्रतिशत बढ़ा है और उच्च शिक्षा का प्रसार कहीं अधिक व्यापक है तब भी प्रतिदिन धार्मिक हिंसा, जातिगत हिंसा और क्षेत्रीय मनमुटाव की घटनाएँ देखी जा सकती हैं। क्या इस वातावरण में साहित्य कुछ कर सकता है? क्या साहित्य को पढ़ने वाले हिंसा से मुक्त हो जाते हैं? क्या वे धर्म और जाति की संकीर्णताओं को छोड़ देते हैं? इन सवालों के सपाट उत्तर नहीं हैं लेकिन यह मानने के तमाम आधार हैं कि साहित्य पढ़ने वाले अधिक संवेदनशील होते हैं। ध्यान देने की बात है कि तकनीक के प्रसार से लोग संवेदनाशील नहीं हुए बल्कि संवेदनहीनता बढ़ी है। भीड़ द्वारा हिंसा के दृश्य अब हमें विचलित नहीं करते। यह उदाहरण भी देखे जा सकते हैं कि पशु प्रेम दर्शाने वाले मनुष्यों के प्रति घृणा और हिंसा पर आमादा हो जाएं। कुछ अरसा पहले आई फिल्म 'आर्टिकल 15' में एक चरित्र पुलिस अधिकारी को याद कीजिये जो एक तरफ बीमार पिल्लों के लिए पशु चिकित्सक थाने में ला रहा है और दूसरी तरफ आदिवासी लड़कियों के साथ बलात्कार और हिंसा में शामिल होने में उसे कोई संकोच नहीं है। यह बीमार होने के लक्षण हैं। इस बीमारी का इलाज केवल साहित्य नहीं कर सकता। तब भी यह कहना होगा कि साहित्य अगर सभ्यता समीक्षा भी है तो उसे यह काम बार-बार करना होगा। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफ़न' पढ़कर पाठक घीसू माधव से नफरत नहीं करने लगता बल्कि घीसू माधव को संवेदनशून्य बनाने वाली समाज संरचना पर उसका ध्यान जाता है। 'पूस की रात' में भयंकर सर्दी में ठिठुरते हल्कू से उसे सहानुभूति ही होती है। अब ऐसे वातावरण में साहित्य की व्यापक और महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहचानने और बार-बार परिभाषित करने की जरूरत है। जाहिर है अपराध साहित्य या लुगदी साहित्य हमारे जीवन के शतांश की सच्चाई भी नहीं है, हाँ कोरे वाग्विलास के लिए कोई कुछ भी पढ़ने के लिए स्वतंत्र है।

साहित्य भाषा का विकास और उसका संवर्धन भी करता है। भारत के सार्वजनिक संसार में पिछले वर्षों में भाषा की भयानक गिरावट हर कहीं देखी जा सकती है। यह गिरावट हिन्दी वाक्यों में अंग्रेजी की भ्रष्ट मिलावट तक सीमित नहीं रही है और न ही हिन्दी के शब्दों के वाजिब प्रयोग तक यह मामला ठहरता है। राजनेताओं और धर्मोपदेशकों द्वारा उच्चारित आप्त वचनों में भाषा की हिंसा और गिरावट एक साथ देखी जा सकती है। इस गिरावट की बड़ी मार स्त्रियों, दलितों और कमजोर वर्गों पर पड़ती है। अच्छी भाषा का यह अर्थ नहीं कि भाषा को तत्समप्रधान बना दिया जाए बल्कि वह सहज-सरल और कुटिलता से मुक्त हो। उसका प्रभाव मन को कलुषित करने वाला न हो। आम बोलचाल की भाषा में कहावतों और मुहावरों का लोप होते जाना हमारी भाषा के विपन्न होते जाने का लक्षण है उतना ही सांस्कृतिक गिरावट का भी। साहित्य भाषा का संरक्षण करता है और पाठकों को संस्कारित करता है। सांस्कृतिक सुरुचि के निर्माण का रास्ता भाषा से ही शुरू होता है।

नयी पीढ़ी के लेखकों पर यह गुरुतर भार है कि वे सांस्कृतिक विघटन के इस दौर में सांस्कृतिक मूल्यों को बचाए रखें और उनकी बार-बार व्याख्या भी करें। लेखक होना जिम्मेदारी का काम है और